चारुचर्या

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेता

चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला
९२

महाकविश्रीक्षेमेन्द्रविरचिता

चारुचर्या

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेता

व्याख्याकारः—
श्री देवदत्त शास्त्री

चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, संवत् २०१९ वि०

मूल्य :

Phone : 3076

दो शब्द

सदाचार शिष्टाचार-विषय की यह छोटी-सी पुस्तक कश्मीरी महाकवि क्षेमेन्द्र ने लिखी है। मूल श्लोकों की व्याख्या करने का मेरा एकमात्र उद्देश्य यही है कि हमारी वर्तमान सन्तान चरित्र की ऊँचाई और गहराई समझकर उसपर आचरण करें। आचरण की सभ्यता को अपनाएँ, प्यार करें। हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में चरित्रबल बढ़ाने की कोई योजना नहीं है और न कोई लक्ष्य ही रखा गया है। यही कारण है कि विद्यार्थिवर्ग उत्तरोत्तर उच्छृङ्खल और बे-लगाम होता जा रहा है, यह उनका दोष नहीं, उनके अभिभावकों, शिक्षकों की दुर्बलता नहीं बल्कि शिक्षा का दोष है।

यदी हमारी शिक्षा-पद्धति में अन्य विषयों की भाँति चरित्र की शिक्षा देने की भी सुविधा हो जाए तो होनहार राष्ट्रनिर्माता विद्यार्थी, स्वदेश, स्ववेष के प्रति अनुरागी बन सकते हैं।

चारुचर्या में ऐसी ही शिक्षा दी गई है कि बालक या प्रौढ़ अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग, सावधान होकर नियमित-संयमित जीवन व्यतीत कर सकें।

श्लोकों का अर्थ लिख देने के बाद भाषा की सरलता सुबोधता पर भी विशेष ध्यान रखा गया है। आशा है हमारा प्रयास लोकोपयोगी सिद्ध होगा।

—देवदत्तशास्त्री

॥ श्रीः ॥

चारुचर्या

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेता

श्रीलाभसुभगः सत्यासक्तः स्वर्गापवर्गदः ।
जयतात् त्रिजगत्पूज्यः सदाचार इवाच्युतः ॥ १ ॥

अच्युत भगवान् की तरह तीनों लोकों में पूज्य सदाचार विजयी हो। अच्युत भगवान् की भाँति सदाचार भी स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करता है। भगवान् और सदाचार दोनों श्री-सम्पन्न होकर सौभाग्यशाली हैं। अच्युत भगवान् सत्या (सत्यभामा) में अनुरक्त हैं तो सदाचार सत्य में आसक्त है ॥ १ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते पुरुषस्त्यजेन्निद्रामतन्द्रितः ।
प्रातः प्रबुद्धं कमलमाश्रयेच्छ्रीर्गुणाश्रया ॥ २ ॥

मनुष्य को ब्राह्ममुहूर्त में आलस्य छोड़कर जाग जाना चाहिए। गुणों का आश्रय लेनेवाली श्री (शोभा) प्रातःकाल खिले हुए (जागे हुए) कमल पर जा विराजती है ॥ २ ॥

पुण्यपूतशरीरः स्यात् सततं स्नाननिर्मलः ।
तत्याज वृत्रहा स्नानात् पापं वृत्रवधार्जितम् ॥ ३ ॥

पुण्य-कार्यों से शरीर को सदैव पवित्र और स्नान द्वारा उसे

स्वच्छ रखना चाहिए। इन्द्र ने वृत्र नाम के असुर को मारने से उत्पन्न पाप स्नान करके ही दूर *किया था*[1] ॥ ३ ॥

न कुर्वीत क्रियां कांचिदनभ्यर्च्य महेश्वरम् ।
ईशार्चनरतं श्वेतं नाभूनेतुं यमः क्षमः ॥ ४ ॥

भगवान् महेश्वर की पूजा किये बिना कोई काम न करना चाहिए। ईश्वर की अर्चना में लगे रहने के कारण ही श्वेत-मुनि को यमराज यमपुरी ले जाने में असमर्थ रहे ॥ ४ ॥

श्राद्धं श्रद्धान्वितं कुर्याच्छास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।
भुवि पिण्डं ददौ विद्वान् भीष्मः पाणौ न शन्तनोः ॥ ५ ॥

श्रद्धापूर्वक शास्त्रों में बताई गयी विधि के अनुसार ही श्राद्ध करना चाहिए। शास्त्र पर श्रद्धा करने के कारण ही विद्वान् भीष्म ने अपने पिता शन्तनु के हाथों में पिण्ड न दे कर भूमि पर ही पिण्ड को रख दिया ॥५॥

नोत्तरस्यां प्रतीच्यां वा कुर्वीत शयने शिरः ।
शय्याविपर्ययाद् गर्भो दितेः शक्रेण पातितः ॥ ६ ॥

उत्तर और पश्चिम की ओर सिरहाना करके नहीं सोना चाहिये। शय्या के उलट-फेर के कारण ही दिति के पुत्र दैत्य का विनाश इन्द्र ने गर्भ में ही कर दिया था ॥ ६ ॥

अर्थिभुक्तावशिष्टं यत् तदश्नीयान्महाशयः ।
श्वेतोऽर्थिरहितं भुक्त्वा निजमांसाशनोऽभवत् ॥ ७ ॥

भिखमंगों, याचकों को कुछ देकर ही भोजन करना चाहिए।

---

१. यह पौराणिक कथा है। इस प्रकार की जिन-जिन पौराणिक कथाओं की चर्चा इस पुस्तक में की गई है, सभी का सांगोपांग उल्लेख चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से प्रकाशित 'हिन्दी चारुचर्या' नामक पुस्तक में किया गया है।

एक वार राजा श्वेत ने किसी भिखारी को कुछ दिए विना ही स्वयं भोजन कर लिया था इसलिए मरने के बाद परलोक में उसे खाने को कुछ नहीं दिया गया, भूख के मारे उसे अपना ही मांस नोच-नोचकर खाना पड़ा ॥ ७ ॥

जपहोमार्चनं कुर्यात् सुधौतचरणः शुचिः ।
पादशौचविहीनं हि प्रविवेश नलं कलिः ॥ ८ ॥

अच्छी तरह पैर धोकर ही जप, होम और देवताओं का पूजन करना चाहिए। पैरों को अपवित्र रखने के कारण ही राजा नल के शरीर में कलियुग ने प्रवेश किया ॥ ८ ॥

न सञ्चरणशीलः स्यान्निशि निःशङ्कमानसः ।
माण्डव्यः शूललीनोऽभूदचौरश्चौरशङ्कया ॥ ९ ॥

निर्भय होकर रात में न घूमना चाहिए। रात में निर्भय होकर घूमने के कारण ही चोर न होते हुए भी माण्डव्य ऋषि को चोर समझकर उन्हें शूली पर चढ़ा दिया गया था ॥ ९ ॥

न कुर्यात् परदारेच्छां विश्वासं स्त्रीषु वर्जयेत् ।
हतो दशास्यः सीतार्थे हतः पत्न्या विदूरथः ॥ १० ॥

मनुष्य को चाहिए कि परायी स्त्री पर अनुराग और स्त्रियों पर विश्वास न करे। राम-पत्नी सीता की कामना रखने से ही रावण का वध हुआ तथा पत्नी (पर विश्वास करने) के कारण ही विदूरथ मारा गया ॥ १० ॥

न मद्यव्यसनी क्षीवः कुर्याद् वेतालचेष्टितम् ।
वृष्णयो हि ययुः क्षीवास्तृणप्रहरणाः क्षयम् ॥ ११ ॥

न मद्य का व्यसन करे और न प्रमत्त होकर अमानवीय व्यवहार

करे। प्रमत्त होने के कारण ही वृष्णिवंश के लोग (एक दूसरे पर) तृण का प्रहार कर-कर के मर गए ॥ ११ ॥

ईर्ष्या कलहमूलं स्यात् क्षमा मूलं हि सम्पदाम् ।
ईर्ष्यादोषाद् विप्रशापमवाप जनमेजयः ॥ १२ ॥

ईर्ष्या से कलह उत्पन्न होता है और क्षमा से ऐश्वर्य की उत्पत्ति होती है। ईर्ष्या दोष के कारण ही जनमेजय को विप्र-शाप मिला ॥

न त्यजेद् धर्ममर्यादामपि क्लेशदशां श्रितः ।
हरिश्चन्द्रो हि धर्मार्थी सेहे चण्डालदासताम् ॥ १३ ॥

क्लेश की हालत में पड़कर भी धर्म की मर्यादा नहीं छोड़नी चाहिए। धर्म की रक्षा के लिए ही हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल का सेवक बनना स्वीकार कर लिया था ॥ १३ ॥

न सत्यव्रतभङ्गेन कार्यं धीमान् प्रसाधयेत् ।
ददर्श नरकक्लेशं सत्यनाशाद् युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह सत्य का व्रत तोड़कर किसी काम को सफल न बनावे। सत्य को छोड़ने के कारण ही युधिष्ठिर को नरक देखना पड़ा था ॥ १४ ॥

कुर्वीत संगतं सद्भिर्नासद्भिर्गुणवर्जितैः ।
प्राप राघवसंगत्या प्राज्यं राज्यं विभीषणः ॥ १५ ॥

सदा सत्पुरुषों की ही संगति करनी चाहिए, गुणरहित की नहीं। श्रीराम की संगति से ही विभीषण को विशाल राज्य प्राप्त हुआ ॥

मातरं पितरं भक्त्या तोषयेन्न प्रकोपयेत् ।
मातृशापेन नागानां सर्पसत्रेऽभवत् क्षयः ॥ १६ ॥

माता-पिता को अपनी भक्ति से प्रसन्न रखना चाहिए, कुपित

नहीं करना चाहिए। माता के शाप से ही सर्प-यज्ञ में नागों का नाश हो गया ॥ १६ ॥

जराग्रहणतुष्टेन निजयौवनदः सुतः ।
कृतः कनीयान् प्रणतश्चक्रवर्ती ययातिना ॥ १७ ॥

पिता को अपनी जवानी देकर उनका बुढ़ापा खुद ले लेने वाले अपने सबसे छोटे विनम्र पुत्र पुरु को पिता ययाति ने प्रसन्न हो कर चक्रवर्ती सम्राट् बनाया ॥ १७ ॥

दानं सत्त्वमितं दद्यान्न पश्चात्तापदूषितम् ।
बलिनात्मार्पितो बन्धे दानशेषस्य शुद्धये ॥ १८ ॥

सात्त्विक भावना रखकर ही दान देना चाहिए। पश्चात्ताप से दूषित दान कभी न देना चाहिए। दान के शेष अंश की शुद्धि के लिए ही बलि ने अपने आपको बन्धन में डाल दिया था ॥ १८ ॥

त्यागे सत्त्वनिधिः कुर्यान्न प्रत्युपकृतिस्पृहाम् ।
कर्णः कुण्डलदानेऽभूत् कलुषः शक्तियाच्ञया ॥ १९ ॥

सत्त्वगुण से पूर्ण व्यक्ति को चाहिए कि वह त्याग (दान) के बदले कुछ पाने की इच्छा न करे। कर्ण ने इन्द्र को अपने कुण्डलों का दान दिया परन्तु उसने शक्ति की याचना की इसलिए कर्ण में मलिनता आ गयी ॥ १९ ॥

ब्राह्मणान्नावमन्येत ब्रह्मशापो हि दुःसहः ।
तक्षकाग्नौ ब्रह्मशापात् परीक्षिदगमत् क्षयम् ॥ २० ॥

ब्राह्मणों का कभी अपमान न करना चाहिए, क्योंकि (अपमानित) ब्राह्मणों का शाप ही असह्य दुःखकारक होता है। ब्राह्मण के शाप से ही राजा परीक्षित को तक्षक नाग ने काट लिया और वह ब्राह्मण की शापाग्नि में भस्म हो गया ॥ २० ॥

दम्भारम्भोद्धतं धर्मं नाचरेदन्तनिष्फलम् ।
ब्राह्मण्यदम्भलब्धास्त्रविद्या कर्णस्य निष्फला ॥ २१ ॥

दम्भपूर्वक उद्धत हो कर धर्म का आचरण नहीं करना चाहिए क्योंकि इस प्रकार से किया गया धर्म अन्त में निष्फल ही होता है। कर्ण ने ब्राह्मण का छद्मवेष धारण कर परशुराम से अस्त्रविद्या सीखी। उनसे उसने ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया, लेकिन कपट का भण्डाफोड़ हो जाने पर उसे वर के स्थान पर यह शाप मिला कि तुम्हारा ब्रह्मास्त्र निष्फल होगा ॥ २१ ॥

नासेव्यसेवया दध्याद् दैवाधीने धने धियम् ।
भीष्मद्रोणादयो याताः क्षयं दुर्योधनाश्रयात् ॥ २२ ॥

जो सेवा करने के योग्य न हो उसकी सेवा धन का लोभ रख कर न करनी चाहिए। दुर्योधन जैसे दुष्ट व्यक्ति की सेवा करने से ही भीष्म-द्रोण जैसे महापुरुषों, महासेनापतियों का नाश हुआ ॥ २२ ॥

परप्राणपरित्राणपरः कारुण्यवान् भवेत् ।
मांसं कपोतरक्षायै स्वं श्येनाय ददौ शिबिः ॥ २३ ॥

दूसरों की प्राण-रक्षा के लिए तत्पर तथा दयावान् अवश्य होना चाहिए। शिवि ने कपोत (कबूतर) की रक्षा के लिए श्येन पक्षी (बाज) को अपना शरीर ही दे डाला ॥ २३ ॥

अद्वेषपेशलं कुर्यान्मनः कुसुमकोमलम् ।
बभूव द्वेषदोषेण देवदानवसंक्षयः ॥ २४ ॥

द्वेष को अपने मन से हटाकर मन को फूल से भी अधिक कोमल और सुन्दर बनाना चाहिए। देवासुर-संग्राम में देवताओं और दानवों का संहार द्वेष के कारण ही हुआ ॥ २४ ॥

अविस्मृतोपकारः स्यान्न कुर्वीत कृतघ्नताम् ।
हत्वोपकारिणं विप्रो नाडीजङ्घमधश्च्युतः ॥ २५ ॥

उपकार को भूलकर मनुष्य को कृतघ्न न होना चाहिये । उपकार करने वाले नाड़ीजंघ नाम के बगुले को मारकर ब्राह्मण पतित हो गया था ॥ २५ ॥

स्त्रीजितो न भवेद् धीमान् गाढरागवशीकृतः ।
पुत्रशोकाद् दशरथो जीवं जायाजितोऽत्यजत् ॥ २६ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य को प्रगाढ़ प्रेम में पड़कर स्त्री के वशीभूत न होना चाहिए। स्त्री के वशीभूत होने से ही राजा दशरथ को पुत्र-शोक से प्राण छोड़ने पड़े ॥ २६ ॥

न स्वयं संस्तुतिपदैर्ग्लानिं गुणगणं नयेत् ।
स्वगुणस्तुतिवादेन ययातिरपतद् दिवः ॥ २७ ॥

स्वयं अपनी प्रशंसा करके अपने गुणों को मलिन न बनाना चाहिए। अपने गुणों की प्रशंसा करने के कारण ही ययाति स्वर्गलोक से पतित हुये ॥ २७ ॥

क्षिपेद् वाक्यशरांस्तीक्ष्णान्न पारुष्यव्युपप्लुतान् ।
वाक्पारुष्यरुषा चक्रे भीमः कुरुकुलक्षयम् ॥ २८ ॥

कठोरता से भरे, बाण जैसे चुभने वाले तीखे वाक्य नहीं बोलना चाहिए। वाणी की कठोरता से उत्पन्न क्रोध के कारण ही भीम ने कुरुवंश का नाश कर डाला ॥ २८ ॥

परेषां क्लेशदं कुर्यान्न पैशुन्यं प्रभोः प्रियम् ।
पैशुन्येन गतौ राहोश्चन्द्रार्कौ भक्षणीयताम् ॥ २९ ॥

स्वामी को प्रिय लगने वाली ऐसी चुगलखोरी न करनी चाहिए, जिसमें दूसरों को क्लेश हो। चुगलखोरी करने से ही सूर्य और चन्द्रमा को राहु ग्रस लिया करता है ॥ २६ ॥

कुर्यान्नीचजनाभ्यस्तां न याच्ञां मानहारिणीम्।
वलियाच्ञापरः प्राप लाघवं पुरुषोत्तमः ॥ ३० ॥

अधम व्यक्तियों द्वारा सदैव की जाने वाली तथा सम्मान को मिटा देने वाली याचना न करनी चाहिए। वलि से याचना करने के कारण ही भगवान् विष्णु को विराट् से वामन रूप धारण करना पड़ा ॥ ३० ॥

न वन्धुसंवन्धिजनं दूषयेन्नापि वर्जयेत्।
दक्षयज्ञक्षयायाभूत् त्रिनेत्रस्य विमानना ॥ ३१ ॥

भाई-वन्धुओं, नातेदारों-रिश्तेदारों का न तो अपमान करना चाहिए, न उन्हें रोकना चाहिए। अपने दामाद शिव जी का अपमान करने से ही दक्ष के यज्ञ का विध्वंस हुआ ॥ ३१ ॥

न विवादमदान्धः स्यान्न परेषाममर्षणः।
वाक्पारुष्याच्छिरश्छिन्नं शिशुपालस्य शौरिणा ॥ ३२ ॥

विवाद में पड़ कर न तो मदान्ध होना चाहिए और न दूसरों पर असहनशीलता प्रकट करनी चाहिए। वचनों की कठोरता के कारण ही भगवान् कृष्ण ने शिशुपाल का शिर काट लिया था ॥ ३२ ॥

गुणस्तवेन कुर्वीत महतां मानवर्धनम्।
हनूमानभवत् स्तुत्या रामकार्यभरक्षमः ॥ ३३ ॥

गुणों की प्रशंसा करके दूसरों का सम्मान बढ़ाना चाहिए। प्रशंसा से ही हनुमान् जी श्रीराम का कार्य करने में समर्थ हुए ॥ ३३ ॥

नात्यर्थमर्थार्थनया धीमानुद्वेजयेज्जनम् ।
अब्धिर्दत्ताश्वरत्नश्रीर्मथ्यमानोऽसृजद् विषम् ॥ ३४ ॥

बुद्धिमान् पुरुष को बार-बार धन की याचना करके किसी को उद्विग्न न करना चाहिए। अश्व, रत्न और लक्ष्मी देने पर भी जब समुद्र मथा गया तो वह विष उगलने लगा ॥ ३४ ॥

वक्रैः क्रूरतरैर्लुब्धैर्न कुर्यात् प्रीतिसंगतिम् ।
वसिष्ठस्याहरद् धेनुं विश्वामित्रो निमन्त्रितः ॥ ३५ ॥

कुटिल, निष्ठुर और लोभी मनुष्यों के साथ प्रेम-संबन्ध न रखना चाहिए। निमन्त्रण पाकर वशिष्ठ के यहाँ पहुँचे हुए विश्वामित्र ने उनकी धेनु का ही अपहरण कर लिया ॥ ३५ ॥

तीव्रे तपसि लीनानामिन्द्रियाणां न विश्वसेत् ।
विश्वामित्रोऽपि सोत्कण्ठः कण्ठे जग्राह मेनकाम् ॥ ३६ ॥

कठोर तपस्या में लीन व्यक्तियों की भी इन्द्रियों पर विश्वास न करना चाहिए। (महातपस्वी होते हुए भी) विश्वामित्र ने उत्सुक हो कर मेनका अप्सरा को गले लगा लिया था ॥ ३६ ॥

कुर्याद्वियोगदुःखेषु धैर्यमुत्सृज्य दीनताम् ।
अश्वत्थामवधं श्रुत्वा द्रोणो गतधृतिर्हतः ॥ ३७ ॥

किसी प्रकार के वियोग से उत्पन्न दुःख में दीनता छोड़कर धैर्य धारण करना चाहिए। अश्वत्थामा का वध सुनते ही धैर्य छोड़ देने के कारण ही द्रोणाचार्य को मरना पड़ा ॥ ३७ ॥

न क्रोधयातुधानस्य धीमान् गच्छेदधीनताम् ।
पपौ राक्षसवद् भीमः क्षतजं रिपुवक्षसः ॥ ३८ ॥

बुद्धिमान् को चाहिए कि वह कभी भी क्रोध रूपी राक्षस के वशीभूत न हो। क्रोध के वशीभूत होने के कारण ही भीम ने राक्षस की भाँति दुःशासन की छाती का खून पिया था ॥ ३८ ॥

त्यजेद् मृगव्यव्यसनं हिंसयातिमलीमसम्।
मृगयारसिकः पाण्डुः शापेन तनुमत्यजत् ॥ ३९ ॥

हिंसा रूपी घोर मलिनता से युक्त शिकार का व्यसन छोड़ देना चाहिए। शिकार में आसक्त होने के कारण ही पाण्डु ने शापवश शरीर छोड़ा था ॥ ३९ ॥

शिवेनेव न तुष्टेन बुद्धिर्देया विनाशिनी।
भस्मासुराय वरदः स हि तेन विडम्बितः ॥ ४० ॥

शंकर भगवान् की भाँति प्रसन्न होकर अपने ही विनाश की बुद्धि न देनी चाहिए। भस्मासुर को वरदान देकर शिव जी ने अपने ही विनाश का उपाय रचा ॥ ४० ॥

न जातूल्लङ्घनं कुर्यात् सतां मर्मविदारणम्।
चिच्छेद वदनं शम्भुर्ब्रह्मणो वेदवादिनः ॥ ४१ ॥

कभी भी सज्जन पुरुषों की वात का ऐसा उल्लंघन न करना चाहिए जिससे उनके हृदय में चोट पहुँचे। ऐसे ही अपराध पर शंकर जी ने वेदवादी ब्रह्मा के चारों मुखों को कतर दिया था ॥ ४१ ॥

गुणेष्वेवादरं कुर्यान्न जातौ जातु तत्त्ववित्।
द्रौणिर्द्विजोऽभवच्छूद्रः शूद्रश्च विदुरः क्षमी ॥ ४२ ॥

तत्त्ववेत्ता पुरुष को चाहिए कि वह जाति की अपेक्षा गुणों का आदर करे। द्रोण का पुत्र जाति से ब्राह्मण होते हुए भी कर्म से शूद्र था और जन्म से शूद्र होते हुए भी विदुर क्षमाशील ब्राह्मण था ॥४२॥

विद्योद्योगी गतोद्वेगः सेवया तोषयेद् गुरुम् ।
गुरुसेवापरः सेहे कायक्लेशदशां कचः ॥ ४३ ॥

विद्यार्थी को चाहिए कि वह उद्वेग रहित होकर अपनी सेवा से गुरु को प्रसन्न करे। गुरु-सेवा में तत्पर होकर ही कच ने महान् शारीरिक क्लेश सहन किया था ॥ ४३ ॥

स्वामिसेवारतं भक्तं निर्दोषं न परित्यजेत् ।
रामस्त्यक्त्वा सतीं सीतां शोकशल्यातुरोऽभवत् ॥ ४४ ॥

स्वामी की सेवा में लीन निर्दोष भक्त (सेवक) का वहिष्कार न करना चाहिये। सती (निर्दोष) सीता को छोड़कर राम वहुत शोकातुर हुये थे ॥ ४४ ॥

रक्षेत् ख्यातिं पुनःस्मृत्या यशःकायस्य जीवनीम् ।
च्युतः स्मृतो जनैः स्वर्गमिन्द्रद्युम्नः पुनर्गतः ॥४५॥

मनुष्य को मृत्यु के वाद पुनः स्मरण की जाने पर यश रूपी शरीर को जीवित रखने वाली प्रसिद्धि की रक्षा करनी चाहिए। राजा इन्द्रद्युम्न मरने के वाद स्वर्ग गया। पुण्य क्षीण हो जाने के वाद जव वह फिर मृत्युलोक में आया तो एक दीर्घजीवी कछुये ने उसके यश का पुनः विस्तार किया, जिससे वह फिर स्वर्ग का हिस्सेदार वना ॥

न कदर्यतया रक्षेल्लक्ष्मीं. क्षिप्रपलायिनीम् ।
युक्त्या व्याडीन्द्रदत्ताभ्यां हृता श्रीर्नन्दभूभृतः ॥४६॥

शीघ्र ही भाग जानेवाली राजलक्ष्मी की रक्षा कायरता से न करनी चाहिये। प्रसिद्ध है कि राजा नन्द की राजलक्ष्मी व्याडि और इन्द्रदत्त ने युक्ति से हरण कर ली थी ॥ ४६ ॥

शक्तिक्षये क्षमां कुर्यान्नाशक्तः शक्तमाक्षिपेत् ।
कार्तवीर्यः ससंरम्भं वबन्ध दशकन्धरम् ॥४७॥

शक्तिहीन हो जाने पर आदमी को सहनशील वन जाना चाहिए। निर्वल होकर किसी सवल पर आक्रमण या आक्षेप न करना चाहिए। कार्तवीर्य अर्जुन ने रावण को आक्षेप करने के कारण ही बाँध लिया था ॥ ४७ ॥

वेश्यावचसि विश्वासी न भवेन्नित्यकैतवे ।
ऋष्यशृङ्गोऽपि निःसङ्गः शृङ्गारी वेश्यया कृतः ॥४८॥

सदा धूर्त्तता से भरे हुए वेश्या के वचन पर भूलकर भी विश्वास न करना चाहिए। योगी और विरागी होते हुए भी ऋष्यशृङ्ग वेश्या द्वारा आसक्त और शृङ्गारी वना दिये गये ॥ ४८ ॥

अल्पमप्यवमन्येत न शत्रुं बलदर्पितः ।
रामेण रामः शिशुना ब्राह्मण्यदययोज्झितः ॥४९॥

शक्ति के अभिमान से चूर होकर छोटे से छोटे शत्रु का भी अपमान न करना चाहिए। शक्ति के अभिमान से चूर परशुराम को वाल रूप राम ने ब्राह्मण समझकर ही छोड़ा था ॥ ४९ ॥

नृशंसं क्रूरकर्माणं विश्वसेन्न कदाचन ।
जगद्वैरी जरासंधः पाण्डवेन द्विधा कृतः ॥५०॥

हत्यारों और क्रूर कर्म करनेवालों का कभी विश्वास न करना चाहिए। भीम ने संसार के परम शत्रु जरासन्ध को वीच से चीर डाला ॥ ५० ॥

औचित्यप्रच्युताचारो युक्त्या स्वार्थं न साधयेत् ।
व्याजवालिवधेनैव रामकीर्तिः कलङ्किता ॥५१॥

उचित और अनुचित पर ध्यान न देकर युक्ति से अपने स्वार्थ का साधन न करना चाहिए। छल से वालि का वध करने के कारण ही भगवान् राम की कीर्ति कलंकित हुई ॥ ५१ ॥

वर्जयेदिन्द्रियजयी विजने जननीमपि ।
पुत्रीकृतोऽपि प्रद्युम्नः कामितः शम्बरस्त्रिया ॥५२॥

एकान्त में यदि माता भी हो तो मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी इन्द्रियों को काबू में रखे। शम्बर असुर की स्त्री अपने पुत्र तुल्य दामाद प्रद्युम्न पर भी कामासक्त हो गयी थी ॥ ५२ ॥

न तीव्रतपसां कुर्याद् धैर्यविप्लवचापलम् ।
नेत्राग्निशलभीभावं भवोऽनैषीन्मनोभवम् ॥५३॥

योगियों, तपस्वियों के धैर्य को डिगाने की चंचलता न करनी चाहिये। ऐसा करने से ही कामदेव भगवान् शिव की नेत्राग्नि से भस्म हो गया ॥ ५३ ॥

न नित्यकलहाक्रान्ते सक्तिं कुर्वीत कैतवे ।
अन्यथाकृद्धिपक्षोऽभूद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ५४ ॥

नित्य कलह से भरे हुए जुए पर आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। इस बात को न मान कर ही युधिष्ठिर अपना सर्वस्व जुए में हार गए थे॥

प्रभुप्रसादे सत्याशां न कुर्यात् स्वप्नसंनिभे ।
नन्देन मन्त्री निहितः शकटालो हि बन्धने ॥ ५५ ॥

राजा की प्रसन्नता पर तनिक भी विश्वास न करना चाहिए। राजा नन्द ने अपने मंत्री शकटार को कैदखाने में डाल दिया था ॥५५॥

न लोकायतवादेन नास्तिकत्वेऽर्पयेद् धियम् ।
हरिर्हिरण्यकशिपुं जघान स्तम्भनिर्गतः ॥ ५६ ॥

लोकायतवाद से प्रभावित होकर नास्तिक हो जाना ठीक नहीं। हिरण्यकशिपु को मारने के लिए भगवान् खम्भा फाड़कर प्रकट हुए थे ॥ ५६ ॥

अत्युन्नतपदारूढः पूज्यान्नैवावमानयेत् ।
नहुषः शक्रतामेत्य च्युतोऽगस्त्यावमाननात् ॥ ५७ ॥

ऊँचे पद पर पहुँचकर बड़ों का अपमान न करना चाहिए। नहुष ने इन्द्र होकर अगस्त्य मुनि का अपमान किया जिससे उसका पतन हो गया ॥ ५७ ॥

सन्धि विधाय रिपुणा न निःशङ्कः सुखी भवेत् ।
सन्धि कृत्वावधीदिन्द्रो वृत्रं निःशङ्कमानसम् ॥ ५८ ॥

शत्रु से सन्धि हो जाने पर भी निःशंक होकर न बैठना चाहिए। सन्धि कर लेने पर जब वृत्रासुर निश्चिन्त हो गया तब इन्द्र ने उसे मार डाला ॥ ५८ ॥

हितोपदेशं श्रुत्वा तु कुर्वीत च यथोचितम् ।
विदुरोक्तमकृत्वा तु शोच्योऽभूत् कौरवेश्वरः ॥ ५९ ॥

हितकर उपदेशों को सुनकर उनका यथोचित पालन करे। विदुर की सलाह न मानने से दुर्योधन का विनाश हुआ ॥ ५९ ॥

बह्वन्नाशनलोभेन रोगी मन्दरुचिर्भवेत् ।
प्रभूताज्यभुजो जाड्यं दहनस्याप्यजायत ॥ ६० ॥

अधिक भोजन करने से रोगी की अग्नि मंद पड़ जाती है। उसे भोजन से अरुचि हो जाती है। घी का अधिक भोजन कर लेने से अग्नि को भी अजीर्ण हो गया था ॥ ६० ॥

यत्नेन शोषयेद्दोषान्न तु तीव्रव्रतैस्तनुम् ।
तपसा कुम्भकर्णोऽभून्नित्यनिद्राविचेतनः ॥ ६१ ॥

प्रयत्न करके अपने अन्दर की बुराइयों को दूर करने की कोशिश

करनी चाहिए। केवल कठिन व्रत से शरीर को सुखाने से कोई फ़ायदा नहीं। देखिये तपस्या से ही कुम्भकर्ण निद्रा में बेहोश पड़ा रहने लगा ॥ ६१ ॥

स्थिरताशां न बध्नीयाद् भुवि भावेषु भाविषु।
रामो रघुः शिविः पाण्डुः क्व गतास्ते नराधिपाः ॥ ६२ ॥

इस संसार में वर्तमान और भविष्य की स्थिरता की आशा न रखनी चाहिए। देखिये, राम, रघु, शिव, पाण्डु आदि चक्रवर्ती राजा कहाँ चले गये ॥ ६२ ॥

विडम्बयेन्न वृद्धानां वाक्यकर्मवपुःक्रियाः।
श्रीसुतः प्राप वैरूप्यं विडम्बिततनुर्मुनेः ॥ ६३ ॥

अपने पूर्वजों के वचन, कर्म, शरीर और क्रियाओं की निन्दा न करनी चाहिए। अष्टावक्र मुनि के शरीर की निन्दा करने से श्रीसुत ने कुरूपता पायी ॥ ६३ ॥

नोपदेशेऽप्यभव्यानां मिथ्या कुर्यात् प्रवादिताम्।
शुक्रषाड्गुण्यगुप्तापि प्रक्षीणा दैत्यसंततिः ॥ ६४ ॥

दुष्टों को शिक्षा देकर अपनी वाणी को व्यर्थ न करना चाहिए। देखिए, शुक्राचार्यजी की छः गुणों से युक्त नीति से सुरक्षित रहते हुए भी दानव अन्त में नष्ट हो गये ॥ ६४ ॥

न तीव्रदीर्घवैराणां मन्युं मनसि रोपयेत्।
कोपेनापातयन्नन्दं चाणक्यः सप्तभिर्दिनैः ॥ ६५ ॥

जो क्रोधी, तुनुक मिजाजी हों और स्थायीरूप से शत्रुता के भाव रखने वाले हों, उन्हें नाराज न करना चाहिए। चाणक्य ने ऐसे ही क्रोध के कारण सात दिन के अन्दर नन्दवंश को नष्ट कर दिया ॥६५॥

न सतीनां तपोदीप्तं कोपयेत् क्रोधपावकम् ।
वधाय दशकण्ठस्य वेदवत्यत्यजत्तनुम् ॥ ६६ ॥

सतियों की तपस्या से प्रज्वलित क्रोधाग्नि को कुपित न करना चाहिए। रावण के वध के लिए वेदवती ने अपना शरीर छोड़ (कर सीता के रूप में जन्म लिया और अन्त में उसे समूल नष्ट कर) दिया ॥

गुरुमाराधयेद् भक्त्या विद्याविनयसाधनम् ।
रामाय प्रददौ तुष्टो विश्वामित्रोऽस्त्रमण्डलम् ॥ ६७ ॥

विद्या और विनय के साधन गुरु की आराधना श्रद्धा और भक्ति से करनी चाहिए। राम की भक्ति से प्रसन्न होकर गुरु विश्वामित्र जी ने उन्हें बड़े-बड़े अमोघ अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये थे ॥ ६७ ॥

वसु देयं स्वयं दद्याद् बलाद् यद् दापयेत् परः ।
द्रुपदोऽपह्नवी राज्यं द्रोणेनाक्रम्य दापितः ॥ ६८ ॥

किसी को कुछ देने का वायदा करने पर अथवा जिसे नियत समय पर दान दिया जाता हो उसे बिना माँगे ही खुद दे देना चाहिये। न तो उसे माँगना पड़े और न किसी के दवाव डालने पर ही दिया जाय। ऐसा न करने से बदनामी होती है। राजा द्रुपद ने गुरु द्रोणाचार्य को राज्य मिलने पर उसका कुछ हिस्सा दे देने का वायदा किया था, किन्तु राज्य मिलने पर उसने उन्हें नहीं दिया तो द्रोणाचार्य ने अर्जुन के द्वारा उस पर आक्रमण कराकर उससे अपना हिस्सा ले लिया था ॥ ६८ ॥

साधयेद्धर्मकामार्थान् परस्परमबाधकान् ।
त्रिवर्गसाधना भूपा बभूवुः सगरादयः ॥ ६९ ॥

धर्म, अर्थ और काम की साधना इतनी मात्रा में करनी चाहिए कि वे एक दूसरे के बाधक न बन जायँ। सगर आदि प्राचीन

महापुरुष, राजा महाराजा इसी त्रिवर्ग की उचित नियमित साधना करने वाले थे ॥ ६९ ॥

स्वकुलान्न्यूनतां नेच्छेत् तुल्यः स्यादथवाधिकः ।
सोत्कर्षेऽपि रघोर्वंशे रामोऽभूत् स्वकुलाधिकः ॥ ७० ॥

अपने वंश से कम होने की इच्छा कभी न करनी चाहिए। उसके बराबर या उससे अधिक होने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। रघुवंश का उत्कर्ष होने पर भी श्रीराम उस कुल से भी अधिक उन्नतिशील हो गये ॥ ७० ॥

कुर्यात्तीर्थाम्बुभिः पूतमात्मानं सततोज्ज्वलम् ।
लोमशादिष्टतीर्थेभ्यः प्रापुः पार्थाः कृतार्थताम् ॥ ७१ ॥

तीर्थों में स्नान करके सदा अपने को पवित्र और निर्मल बनाना चाहिए। लोमश द्वारा बताए गए पवित्र तीर्थों में स्नान करने से ही पाण्डव कृतार्थ हुए थे ॥ ७१ ॥

आपत्कालोपयुक्तासु कलासु स्यात् कृतश्रमः ।
नृत्तवृत्तिर्विराटस्य किरीटी भवनेऽभवत् ॥ ७२ ॥

आपत्ति के समय मदद देने वाली कलाओं की भी जानकारी रखनी चाहिए। पता नहीं कौन कला किस समय काम दे जाय। अर्जुन जैसे महान् योद्धा और विद्वान् ने आपत्ति के समय राजा विराट के यहाँ नृत्यकला सिखाने की जीविका प्राप्त की थी ॥ ७२ ॥

अरागभोगसुभगः स्यात् प्रसक्तविरक्तधीः ।
राज्ये जनकराजोऽभून्निर्लेपोऽम्भसि पद्मवत् ॥ ७३ ॥

मनुष्य को चाहिए कि अपनी बुद्धि को भोग-विलास में आसक्त

न बनाये। राजा जनक राजकाज करते हुए भी उससे इस तरह निर्लिप्त रहते थे, जैसे जल में कमल का पत्ता ॥ ७३ ॥

अशिष्यसेवया लाभलोभेन स्याद् गुरुर्लघुः।
संवर्तयज्ञयाच्ञाभिर्लज्जां लेभे बृहस्पतिः ॥ ७४ ॥

अशिष्य की सेवा के लाभ का लोभ करने से गुरु लघु बन जाता है। संवर्त के यज्ञ में याचना करने से ही गुरु बृहस्पति को लज्जित होना पड़ा था ॥ ७४ ॥

नष्टशीलां त्यजेन्नारीं रागवृद्धिविधायिनीम्।
चन्द्रोच्छिष्टाधिकप्रीत्यै पत्नी निन्द्याप्यभूद् गुरोः ॥ ७५ ॥

भोग-विलास बढ़ानेवाली दुराचारिणी स्त्री को त्याग देना चाहिए। चन्द्रमा द्वारा बरती गयी अपनी पत्नी पर अधिक प्रीति होने के कारण देवगुरु बृहस्पति ने उसे जब पुनः स्वीकार कर लिया तो उनकी बड़ी निन्दा हुई ॥ ७५ ॥

न गीतवाद्याभिरतिर्विलासव्यसनी भवेत्।
वीणाविनोदव्यसनी वत्सेशः शत्रुणा हृतः ॥ ७६ ॥

गाने बजाने में आसक्त और विलास व्यसन में सदैव मग्न न रहना चाहिए। वीणा विनोद का अत्यधिक व्यसन रखने के कारण वत्सराज उदयन शत्रु द्वारा छले गये ॥ ७६ ॥

उद्वेजयेन्न तैक्ष्ण्येन रामाः कुसुमकोमलाः।
सूर्यो भार्याभयोच्छित्त्यै तेजो निजमशातयत् ॥ ७७ ॥

कुसुम के समान सुकोमल स्त्रियों को अपनी तीक्ष्णता से कभी उद्विग्न न करना चाहिए। अपनी पत्नी का भय दूर करने के लिए सूर्य को अपना तेज कम करना पड़ा था ॥ ७७ ॥

पद्मवन्न नयेत् कोषं धूर्तभ्रमरभोज्यताम् ।
सुरैः क्रमेण नीतार्थः श्रीहीनोऽभूत् पुराम्बुधिः ॥ ७८ ॥

कमल की भाँति अपने कोश को धूर्त भ्रमर का भोज्य न बनाना चाहिए। देवताओं द्वारा क्रमशः एक-एक करके धन बटोर लेने के कारण ही महासागर श्रीहीन हो गया था ॥ ७८ ॥

नोपदेशामृतं प्राप्तं भग्नकुम्भनिभस्त्यजेत् ।
पार्थो विस्मृतगीतार्थः सासूयः कलहेऽभवत् ॥ ७९ ॥

महापुरुषों से प्राप्त उपदेशामृत को हृदय-घट में सुरक्षित रखना चाहिए। फूटे हुए घड़े के समान उसे बहा न देना चाहिए। देखिये, अर्जुन गीता का अर्थ भूल कर लड़ाई करने और गुणों में दोषों को देखने में ही निरत हो गया था ॥ ७९ ॥

न पुत्रायत्तमैश्वर्यं कार्यमार्यैः कदाचन ।
पुत्रार्पितप्रभुत्वोऽभूद् धृतराष्ट्रस्तृणोपमः ॥ ८० ॥

विवेकी मनुष्य को चाहिए कि वह अपना ऐश्वर्य सहसा अपने पुत्रों को न सौंप दे। धृतराष्ट्र अपने प्रभुत्व को पुत्रों को सौंप देने के कारण ही तिनका के समान बन गया था ॥ ८० ॥

न शत्रुशेषदूष्याणां स्कन्धे कार्यं समर्पयेत् ।
निष्प्रतापोऽभवत् कर्णः शल्यतेजोवधार्दितः ॥ ८१ ॥

शत्रु होते हुये विशेष रूप से दुष्टता करने वालों के कन्धे पर किसी कार्य का भार नहीं देना चाहिए। शल्य द्वारा तेज की हानि करने से पीड़ित हुआ कर्ण प्रतापहीन हो गया ॥ ८१ ॥

न लब्धे प्रभुसंमाने फलक्लेशं समाश्रयेत् ।
ईश्वरेण धृतो मूर्ध्नि क्षीण एव क्षपापतिः ॥ ८२ ॥

अपने स्वामी द्वारा ऊँचा सम्मान प्राप्त करने के लिए क्लेशकारक फल को स्वीकार न करना चाहिए। शंकर भगवान् द्वारा शिर पर धारण किये जाने पर भी चंद्रमा क्षीण ही बना हुआ है ॥ ८२ ॥

श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं न त्यजेत् साधुसेवितम् ।
दैत्यानां श्रीवियोगोऽभूत् सत्यधर्मच्युतात्मनाम् ॥ ८३ ॥

सज्जनों द्वारा सेवित श्रुतियों, स्मृतियों द्वारा बताये गये आचरण को न छोड़े। सत्य-धर्म का परित्याग करने से ही दैत्यों को लक्ष्मी से हाथ धोना पड़ा ॥ ८३ ॥

श्रियः कुर्यात् पलायिन्या बन्धाय गुणसंग्रहम् ।
दैत्यांस्त्यक्त्वा श्रिता देवा निर्गुणान्सगुणाः श्रिया ॥ ८४ ॥

चंचल लक्ष्मी को बाँधने के लिए गुणों का संग्रह करना चाहिए। गुणहीन हो जाने के कारण दैत्यों को छोड़कर लक्ष्मी गुणवान् देवताओं के पास चली गयी ॥ ८४ ॥

पदाग्निं गां गुरुं देवं न चोच्छिष्टः स्पृशेद् घृतम् ।
दानवानां विनष्टा श्रीरुच्छिष्टस्पृष्टसर्पिषाम् ॥ ८५ ॥

अग्नि, गौ, गुरु और देवताओं को पैर से न छूना चाहिए। जूठे हाथों से घी को भी न छूना चाहिए। जूठे हाथों से घी को छूने से दानव श्रीहीन हो गये थे ॥ ८५ ॥

प्रतिलोमविवाहेषु न कुर्यादुन्नतिस्पृहाम् ।
ययातिः शुक्रकन्यायां सस्पृहो म्लेच्छतां गतः ॥ ८६ ॥

प्रतिलोम विवाह से उन्नति की आशा न रखनी चाहिए। ययाति ने शुक्र की कन्या से विवाह करने से ही म्लेच्छता प्राप्त की ॥

रूपार्थकुलविद्यादिहीनं नोपहसेन्नरम् ।
हसन्तमशपन्नन्दी रावणं वानराननः ॥ ८७ ॥

रूप, द्रव्य, कुल और विद्या आदि से हीन पुरुष की हँसी कभी नहीं करनी चाहिये। वानररूपधारी नन्दी ने अपना उपहास करने वाले रावण को शाप दे दिया था ॥ ८७ ॥

बन्धूनां वारयेद् वैरं नैकपक्षाश्रयो भवेत् ।
कुरुपाण्डवसङ्ग्रामे युयुधे न हलायुधः ॥ ८८ ॥

भाई-भाई के बीच उत्पन्न वैरभाव को दूर करने का उपाय करना चाहिए। किसी एक का पक्ष ग्रहण कर उनके वैर को बढ़ाना न चाहिए। कौरवों और पाण्डवों के युद्ध में बलरामजी निष्पक्ष ही बने रहे ॥ ८८ ॥

परोपकारं संसारसारं कुर्वीत सत्त्ववान् ।
निदधे भगवान् बुद्धः सर्वसत्त्वोद्धृतौ धियम् ॥ ८९ ॥

परोपकार ही संसार का सार है। ऐसा समझकर सभी जीवों के साथ उपकार करना चाहिए। भगवान् बुद्ध ने सभी जीवों का उद्धार करने की ही बुद्धि रखी ॥ ८९ ॥

बिभृयाद् बन्धुमधनं मित्रं त्रायेत दुर्गतम् ।
बन्धुमित्रोपजीव्योऽभूदर्थिकल्पद्रुमो बलिः ॥ ९० ॥

गरीब भाई का भरण-पोषण करना चाहिए। मित्र की विपत्ति से रक्षा करनी चाहिए। बन्धुओं और मित्रों के साथ ऐसा ही व्यवहार करने से बलि याचकों का कल्पवृक्ष बना हुआ था ॥ ९० ॥

न कुर्यादभिचारोग्रवध्यादिकुहकाः क्रियाः ।
लक्ष्मणेनेन्द्रजित् कृत्याद्यभिचारमयो हतः ॥ ९१ ॥

किसी का वध करने के लिए मारण-प्रयोग, कुहुक-क्रिया आदि तांत्रिक प्रयोग कभी नहीं करने चाहिए। लक्ष्मण जी ने कृत्या आदि जैसे उग्रतांत्रिक प्रयोग करने वाले इन्दजित् मेघनाद का वध कर डाला था ॥ ९१ ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थः स्याद् वानप्रस्थो यतिः क्रमात्।
आश्रमादाश्रमं याता ययातिप्रमुखा नृपाः ॥ ९२ ॥

मनुष्य को क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों में जाना चाहिए। ययाति आदि प्राचीन राजाओं ने इसी क्रम से एक आश्रम के बाद दूसरे आश्रम में प्रवेश किया था ॥

कुर्याद् व्ययं स्वहस्तेन प्रभूतधनसंपदाम् ।
अगस्त्यभुक्ते वातापौ कोषस्यान्यैः कृतो व्ययः ॥ ९३ ॥

आवश्यकता से अधिक धन-संपत्तियों का व्यय अपने हाथों से कर देना चाहिए। नहीं तो अगस्त्य द्वारा वातापि नामक दैत्य का भक्षण किये जाने पर जैसे दूसरों ने उसके कोश का व्यय किया उसी प्रकार अन्य लोग व्यय कर डालेंगे ॥ ९३ ॥

जन्मावधि न तत् कुर्यादन्ते संतापकारि यत्।
सस्मारैकशिरःशेषः सीताक्लेशं दशाननः ॥ ९४ ॥

अन्त में सन्ताप पहुँचाने वाले काम जीवन में कभी न करने चाहिए। एक सिर बच जाने पर भी रावण सीता के निमित्त से आई हुई विपत्ति को स्मरण करता रहा ॥ ९४ ॥

जराशुभ्रेषु केशेषु तपोवनरुचिर्भवेत् ।
अन्ते वनं ययुर्धीराः कुरुपूर्वा महीभुजः ॥ ९५ ॥

वृद्धावस्था आ जाने पर, बाल पक जाने पर तपोवन की ओर रुचि रखनी चाहिए। कुरु आदि प्राचीन धीर राजाओं ने अन्तिम अवस्था में तपोवन का ही रास्ता लिया था ॥ ९५ ॥

पुनर्जन्मजराच्छेदकोविदः स्याद् वयःक्षये ।
विदुरेण पुनर्जन्मबीजं ज्ञानानले हुतम् ॥ ९६ ॥

वृद्धावस्था आ जाने पर मोक्ष प्राप्त करने का उपाय करना चाहिए जिससे दुबारा न वृद्ध होना पड़े, न पैदा होना पड़े। विदुर ने पुनर्जन्म का बीज (शुभाशुभ कर्म) ज्ञानरूपी अग्नि में भस्म कर डाला था ॥ ९६ ॥

परमात्मानमन्तेऽन्तर्ज्योतिः पश्येत् सनातनम् ।
तत्प्राप्त्या योगिनो जाताः शुकशान्तनवादयः ॥ ९७ ॥

मृत्युकाल में परमात्मा की सनातन ज्योति का दर्शन अपने हृदय के अन्दर करना चाहिए। शुकदेव, भीष्म आदि उसी ज्योति को प्राप्त कर योगी हो गए ॥ ९७ ॥

प्राप्तावधिरजीवेऽपि जीवेत् सुकृतसंततिः ।
जीवन्त्यद्यापि मांधातृमुखाः कायैर्यशोमयैः ॥ ९८ ॥

निश्चित अवधि पर मर जाने से पूर्व ही अच्छे कामों से जीवित रहने का उपाय करना चाहिए। मान्धाता आदि पुण्यात्मा महापुरुष आज भी अपने यशःशरीर से जीवित हैं ॥ ९८ ॥

अन्ते संतोषदं विष्णुं स्मरेद्धन्तारमापदाम् ।
शरतल्पगतो भीष्मः सस्मार गरुडध्वजम् ॥ ९९ ॥

अन्तकाल में सन्तोष देने वाले विपत्ति-नाशक भगवान् विष्णु का

ध्यान करना चाहिए। शर-शय्या पर पड़े हुए भीष्म ने गरुड़ध्वज भगवान् का ध्यान किया था ॥ ६६ ॥

श्रव्या श्रीव्यासदासेन समासेन सतां मता।
क्षेमेन्द्रेण विचार्येयं चारुचर्या प्रकाशिता ॥१००॥

सज्जनों द्वारा अनुमोदित, सुनने योग्य इस चारुचर्या को व्यासजी के अनुचर क्षेमेन्द्र ने भलीभाँति विचार कर संक्षेप में प्रकाशित किया है ॥ १०० ॥

इति श्रीप्रकाशेन्द्रात्मजव्यासदासापराख्यमहाकविश्रीक्षेमेन्द्रकृता चारुचर्या समाप्ता ॥